शिक्षा का मकसद

गांधी और टैगोर

शिक्षा का मकसद क्या है, यह सवाल उन सभी विचारकों के सामने चिन्तन का विषय रहा है जो एक बेहतर समाज की संकल्पना को साकार करना चाहते हैं और शिक्षा को इसका जरिया मानते हैं। बीसवीं सदी के भारत में महात्मा गांधी और रवीन्द्रनाथ टैगोर, ऐसे प्रमुख विचारक रहे हैं जिनके विचारों का गहरा प्रभाव भारतीय शिक्षा चिन्तन पर देखा जा सकता है। दोनों के चिन्तन ने उस समय के बुद्धिजीवियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। दोनों ही विचारकों ने प्रचलित शिक्षा व्यवस्था की आलोचना पर अपने शिक्षा चिन्तन की बुनियाद रखी और दोनों का विश्वास था कि अच्छी शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से ही बेहतर समाज की संकल्पना को साकार किया जा सकता है। गांधी जी ने प्रचलित शिक्षा की आलोचना करते हुए कहा, ''सामान्य रूप से शिक्षा का अर्थ अक्षर ज्ञान से लिया जाता है।'' उनका मानना था कि, ''अक्षर ज्ञान तो एक औजार है जिसका उपयोग अच्छे काम के लिए भी किया जा सकता है और गलत काम के लिए भी।'' ''बच्चों को पढ़ना, लिखना और अंक गणित सिखाने को प्राथमिक शिक्षा कहा जाता है। ...उसे अक्षर ज्ञान कराने का मकसद क्या है ? क्या आप इससे उसकी थोड़ी भी खुशी बढ़ा पाएंगे ? क्या आप उसे अपनी झोंपड़ी और उसके पास जो कुछ है उससे असंतुष्ट करना चाहते हैं ? यदि आप यह करना चाहते हैं तो उसे इस तरह की शिक्षा की जरूरत नहीं है (हिन्द स्वराज)।'' गांधी जी शिक्षा और नैतिक मूल्यों को पर्याय मानते थे। वे मानते थे कि शिक्षा से स्वयं व्यक्ति का और उसके समाज का भला होना चाहिए। गांधी जी के शैक्षिक सिद्धान्त उनके समग्र दर्शन का हिस्सा थे जो कि अहिंसा और सत्य पर आधारित मानव समाज के प्रति उनकी दृष्टि पर निर्भर थे। गांधी जी के चिन्तन में शैक्षिक विचारों के बीज दक्षिण अफ्रीका में फीनिक्स एवं टॉल्सटॉय फार्म पर किए प्रयोगों से उर्वर होने लगे थे। 1920 के असहयोग आन्दोलन के समय उन्होंने ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थापित; कोर्ट, कौंसिल और कॉलेज का विरोध किया और वहां से स्वदेशी शिक्षा प्रणाली के विकास के विचार को बल मिला। 1937 में प्रस्तावित बुनियादी शिक्षा की राष्ट्रीय योजना को भारतीय बच्चों की आधारभूत तैयारी के रूप में देखा गया जिससे कि वे राष्ट्रीय समाज में भागीदारी कर सकें और जो कि जीवन के हर पहलू-सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक को समाहित करे और सत्य एवं अहिंसा आधारित हो। गांधी जी के शैक्षिक चिन्तन में हाथ के काम पर बहुत जोर दिया गया है। उनका मानना था कि हाथ के काम का प्रशिक्षण बुद्धि को उद्दीप्त करने का सैद्धान्तिक औजार है और हाथ का काम विभिन्न बिन्दुओं पर आधारित अन्तहीन बौद्धिक जिज्ञासा को जन्म दे सकता है तथा हाथ का काम खोज एवं शोध के लिए दरवाजे खोलता है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 1901 में शान्तिनिकेतन की स्थापना की और अपनी कल्पनाशील, प्रयोगधर्मी शिक्षा व्यवस्था के जरिए और अपने लेखन के द्वारा शिक्षार्थियों और शिक्षकों को प्रभावित किया। शान्तिनिकेतन को उन्होंने भारत भर में सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक गतिविधियों को केन्द्र बनाया जिससे कि वे भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में अपनी भूमिका निभा सकें। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने स्वयं के स्कूली अनुभवों की निरर्थकता और निर्जीवता की गहरी आलोचना की। उनके शिक्षा दर्शन में अपने स्कूली अनुभवों के पुनर्चिन्तन की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। उनके शिक्षा के उद्देश्यों को गीतांजलि में उनकी एक कविता से समझा जा सकता है, ''जहां मन हो निर्भय और रख सकें माथा ऊंचा/ज्ञान सुलभ हो सहज जहां/भौतिक दीवारों में बंटी हो न दुनिया।/जहां सत्य की गहराई से वाणी आए/अथक प्रेरणा बांह पसारे परम पूर्णता को पाने को/जहां तर्क की अविरल धारा सूख न जाए मृत परम्पराओं के नीरस रेगिस्तान में/जहां मन चिन्तन और कर्म से संचालित हो...।'' टैगोर ने अपनी शिक्षा में 'मन की स्वतंत्रता' और तर्क पर काफी जोर दिया।

रवीन्द्रनाथ टैगोर आरंभिक शिक्षा के प्रसार को सामाजिक प्रगति के लिए जरूरी मानते थे। उन्होंने देशभर में शिक्षा के समान अवसरों की पुरजोर पैरवी की लेकिन शैक्षिक सुविधाओं के विस्तार के लिए उनका जोर ग्रामीण क्षेत्र पर ज्यादा था क्योंकि वहां पहले से ही इन सुविधाओं का बहुत अभाव था। उनका मानना था कि देशभर में न सिर्फ शिक्षा के व्यापक अवसर होने चाहिएं बल्कि स्कूलों को अपने आप में अधिक जीवंत और आनन्ददायी होना चाहिए। वे भारत की दुर्दशा के लिए शिक्षा के अभाव को जिम्मेदार मानते थे।

तमाम सामाजिक समस्याओं- जातीय भेदभाव, धार्मिक टकराहट, काम से नफरत और आर्थिक बदहाली आदि के लिए वे सिर्फ शिक्षा की कमी को ही एकमात्र कारण मानते थे। शान्तिनिकेतन में उन्होंने शैक्षिक प्रक्रियाओं में संवाद, पुनर्चिन्तन और परस्पर संप्रेषण की क्षमताओं के विकास पर बल दिया तथा अनुशासन के बजाए स्व-प्रेरणा, प्रतिस्पर्द्धा के बजाए बौद्धिक जिज्ञासा पर ज्यादा जोर दिया। अपने शैक्षिक प्रयोगों को उन्होंने ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों से जोड़ा और इसका स्वभाविक परिणाम श्रीनिकेतन की स्थापना थी। शान्तिनिकेतन और श्रीनिकेतन के बाद उन्होंने शिक्षा सत्र का प्रयोग आरंभ किया जिससे एल. के. एमहर्स्ट भी आकर जुड़े। रवीन्द्रनाथ टैगोर और एमहर्स्ट बच्चों में प्रकृति प्रदत्त क्षमताओं के सहज, स्वभाविक और निर्बाध विकास में यकीन करते थे एवं बाहरी दबाव को इन क्षमताओं के विकास में बाधा मानते थे। प्रकृति के साहचर्य में सीखने पर उनका जोर था। वे प्रकृति की कार्यशाला को सबसे ज्यादा बड़ी और सबसे ज्यादा मददगार मानते थे लेकिन कुशल लोगों की प्रेरणा और निगरानी में जीवन की प्रयोगशाला में प्रयोग करने और अनुभव हासिल करने के लिए अपार संभावनाओं से युक्त मानते थे। महात्मा गांधी की तरह रवीन्द्रनाथ टैगोर के लिए भी शिक्षा के सामाजिक सरोकार प्रमुख थे। इस अंक में शामिल एल. के. एमहर्स्ट के लेख-शिक्षा सत्र- के प्रयोग में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि स्कूल को उन्होंने सामाजिक गतिविधियों से जोड़ा।

महात्मा गांधी और रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा चिन्तन में समान रूप से बच्चे की मातृभाषा की केन्द्रीय भूमिका थी। दोनों ही मानते थे कि बच्चे की आरंभिक शिक्षा मातृभाषा में होनी चाहिए। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शान्तिनिकेतन के आरंभ से ही मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया। इस अंक में शामिल मार्जरी साइक्स का लेख- राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा 1937-1944- बुनियादी शिक्षा की 50वीं वर्षगांठ पर लिखे गए उनके एक बड़े लेख 'स्टोरी ऑफ नई तालीम 1937-1987' का एक अंश है जो कि गांधी जी के शैक्षिक चिन्तन पर आधारित शैक्षिक प्रयोगों का एक दस्तावेजी प्रमाण है। यह लेख राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा के विचार और उस विचार को लेकर चली बहस को सामने रखता है। उस दौर में बुनियादी शिक्षा को शक की नजर से देखा गया। आलोचकों का मानना था कि बुनियादी शिक्षा बाल श्रमिकों को बढ़ावा देने का साधन बनेगी। मार्जरी साइक्स का यह लेख बुनियादी शिक्षा पर उठाए जाने वाले सवालों का जबाव भी देता है।

महात्मा गांधी और रवीन्द्रनाथ टैगोर के साथ काम करने वाले व्यक्तिओं के एक-दूसरे कार्यक्रमों में आवागमन से इन दो शिक्षा दर्शनों में भी आपसी संवाद कायम हुआ। स्वयं मार्जरी साइक्स ने बुनियादी शिक्षा में काम आरंभ करने से पहले करीब तीन वर्ष तक शान्तिनिकेतन में कार्य किया। आर्यनायकम् और आशा देवी बुनियादी शिक्षा में आने से पहले शान्तिनिकेतन में शैक्षिक कार्यों से जुड़े हुए थे। देवी प्रसाद शान्तिनिकेतन से बुनियादी शिक्षा में आए। कुछ असहमतियों के बावजूद कुछ मुद्दों पर एक-दूसरे को प्रभावित किया। जैसा कि मार्जरी साइक्स अपने लेख में लिखती हैं कि हाथ के काम में सौन्दर्य के स्थान पर हुई बहसों में रवीन्द्रनाथ के शिक्षा चिन्तन का प्रभाव था।

इन दो प्रमुख लेखों के अलावा चतर सिंह मेहता का लेख 'क्या, कब और कैसे पढ़ाएं : डॉ. जेरोम ब्रूनर के विचार' जेरोम ब्रूनर के सीखने के सिद्धान्तों पर गंभीरता से विचार करता है। वेणु का लेख- 'शिक्षा में लोकतंत्र : एक ढांचागत पड़ताल' शैक्षिक सुधारों के लिए ढांचागत बदलावों की बात करता है। उनके अनुसार शिक्षा में बदलाव तभी आ सकता है जब शैक्षिक प्रक्रियाओं में शिक्षकों को स्वायत्ता मिले और उन्हें शिक्षाक्रम निर्धारण में हिस्सेदारी का मौका मिले, शिक्षकों को अपनी शैक्षिक समस्याओं को आपस में मिलकर सुलझाने के अवसर मिलें। साथ ही शिक्षा के ढांचे के पदानुक्रम में शिक्षक को हासिल स्थान में बदलाव आए तथा शिक्षक एवं स्कूल प्रशासन तथा शिक्षक और बच्चों के बीच बराबरी के रिश्ते कायम हों।

डॉ. राजीव गुप्ता गुजरात एवं राजस्थान की समाजशास्त्र की पुस्तकों का विश्लेषण करते हैं। उनका मानना है कि ये किताबें किसी भी दृष्टि से प्रगतिशील नहीं हैं और इनमें न केवल विषयवस्तु को संप्रेषित करने के तरीके अनुचित हैं बल्कि ये शिक्षार्थियों को तमाम तरह के पूर्वाग्रहों से भरती हैं। निशा गुप्ता के वनस्थली में अपने शिक्षण के अनुभवों के साथ ही इस अंक में पुस्तक समीक्षा में 'भूमण्डलीय पूंजीवाद के विरुद्ध आलोचनात्मक शिक्षा' पुस्तक पर सुरेश पंडित की समीक्षा और बाल साहित्य में कमलेश चन्द्र जोशी की समीक्षा प्रस्तुत है। शिक्षा विमर्श के अंकों पर सभी पाठकों की बेवाक राय का हमें इन्तजार है। ◆

विश्वंभर